Chap-5

पंचम् अध्याय :

सामाजिक मान्यताओं के उल्लंघन से उद्भूत पारिवारिक विघटन की स्थितियाँ – हिन्दी – गुजराती कहानी के संदर्भ

पंचम अध्याय :

सामाजिक मान्यताओं के उल्लंघन से उद्भूत पारिवारिक विघटन की स्थितियाँ – हिन्दी – गुजराती कहानी के संदर्भ

सामाजिक मान्यताओं के उल्लंघन से उद्भूत पारिवारिक विघटन की स्थितिया – हिन्दी–गुजराती कहानी के संदर्भ

व्यक्ति समाज का एक प्रमुख एवं महत्वपूर्ण अंग है। मनुष्य के लिए समाज से अलग रहने की कल्पना सम्भव नहीं है। "समाज व्यक्ति को अवसर व पर्यावरण प्रदान करता है, जिसमें कि व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण व विकास सम्भव हो, और दूसरी ओर समाज व्यक्ति के व्यवहार, विश्वास तथा आचार को प्रभावित, नियमित और नियन्त्रित भी करता है।"[1]

सामान्यतः रोज की बोलचाल की भाषा में समाज का अर्थ है – "व्यक्तियों का समूह। परन्तु वैज्ञानिक दृष्टिकोण से 'समाज' की परिभाषा कुछ भिन्न प्रकार से की जाती है। सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री श्री गिडिंग्स के शब्दों मे "समाज स्वयं एक संघ है, एक संगठन है, औपचारिक सम्बन्धों का योग है, जिसमें सहयोग देने वाले व्यक्ति आपस में एक-दूसरे से सम्बद्ध होते हैं।"[2]

मेकाइवर तथा पेज के मतानुसार - "समाज रीति-रिवाजों और कार्य-प्रणालियों की, अधिकार और पारस्परिक सहयोग की, अनेक समूहों और भागों की, मानव-व्यवहार

के नियन्त्रणों और स्वाधीनताओं की व्यवस्था है। समाज सामाजिक सम्बन्धों का जाल है।"[3]

समाज सामाजिक सम्बन्धों का एक जाल ही है और इस जाल की अभिव्यक्ति हमें नाना प्रकार से देखने को मिलती है। समाज के सम्पर्क में आने से ही व्यक्ति छोटी-छोटी बातों से लेकर बड़ी-बड़ी बातें तक सीखता है। यथा - "खाने-पीने का ढंग, बोलना-चलना, पूजन-अर्चना का ढंग, सहयोग और सहभावना, अनुकरण आदि सभी कुछ समाज से ही सीखता है। समाज के साथ अन्तः सम्बन्ध होने के कारण ही व्यक्ति मानव कहलाने का अधिकारी हो पाता है। इस प्रकार व्यक्ति और समाज के बीच पारस्परिक सम्बन्ध है। इनमें से किसी को भी समझने के लिए दोनों ही आवश्यक है। व्यक्ति समाज की एक इकाई है औरसमाज इन इकाइयों का सामूहिक रूप है।"[4]

व्यक्ति के बिना समाज का अस्तित्व नहीं है और समाज से हटकर व्यक्ति का जीवन दुःसाध्य है। जन्म से मनुष्य में कोई सामाजिक गुण नहीं होता, अपितु उन गुणों का उद्भव और विकास मनुष्य में समाज के अन्दर रहने से ही दिन-प्रतिदिन की क्रियाओं से होता है।

प्रायः मनुष्य की यह धारणा होती है कि वह स्वतन्त्र है, अपनी इच्छानुसार कुछ भी कर सकता है। लेकिन यह धारणा भ्रामक है। व्यक्ति कभी भी समाज द्वारा पूर्णतः स्वतन्त्र नहीं होता। अगर व्यक्ति इच्छानुसार कार्य करने लगे तो समाज में अव्यवस्था फैल जायेगी।

हर व्यक्ति उनको यथासंभव मानने के लिए बाध्य है। ऑगबर्न एवं निकाक के अनुसार - "दबाव का वह प्रतिमान जो व्यवस्था एवं स्थापित नियमों को बनाए रखने का प्रयत्न करता है, सामाजिक नियन्त्रण की व्यवस्था कहा जाता है।"[5]

लेकिन इसका आशय यह नहीं कि समाज ही सब कुछ है। व्यक्ति को भुलाकर समाज की कल्पना कभी नहीं की जा सकती। यह मनुष्य की आशाएँ, इच्छाएँ, आवश्यकताएँ ही हैं; यह उसकी कल्पनाएँ, स्वप्न, सहयोग और संघर्ष ही हैं जो सामाजिक सम्बन्ध या समाज का निर्माण करते हैं। इसके अभाव में समाज का अस्तित्व ही सम्भव नहीं। व्यक्ति इन्हीं इच्छाओं और आवश्यकताओं हेतु एक-दूसरे से अन्तर्किया स्थापित करता है। इन्हीं की परिणति सामाजिक सम्बन्धों को जन्म देती है। इन्हीं सम्बन्धों के फलस्वरूप 'समाज' का उद्भव और विकास होता है। 'व्यक्ति' और समाज में एक के बिना दूसरा अर्थहीन है।

इस तरह सामाजिक विघटन शब्द का अत्यन्त व्यापक उपयोग समाजशास्त्र के क्षेत्र में हुआ है। सामाजिक विघटन की परिभाषा सामूहिक सम्बन्धों की क्षीणता, संस्थाओं के विखंडन, एकात्म के पतन तथा सामूहिक लक्ष्यों की प्राप्ति में असफलता के रूप में की जा सकती है। सामाजिक विघटन वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा समूह के सदस्यों के मध्य सम्बन्ध टूट जाते या नष्ट हो जाते हैं।

जिस प्रकार समाज विघटित होता है उसी प्रकार व्यक्तित्व भी विघटित होता है।

व्यक्ति तथा समाज एक-दूसरे से चक्रीय रूप में जुड़े हैं। विघटन सम्बन्धी विभिन्न विचारों को मर्टन ने प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। संक्षिप्त रूप से मर्टन के विघटन सम्बन्धी सिद्धांत निम्नलिखित हैं :

(१) विघटन आधुनिक समाजों की एक स्थायी विशेषता है।

(२) विघटन की उत्पत्ति के लिए सामाजिक एवं सांस्कृतिक संरचना समान रूप से उत्तरदायी है।

(३) विघटन का मूल्य स्त्रोत, समाज में अप्रतिमानता की दशा है।

(४) अप्रतिमानता के प्रति, व्यक्ति के अनुकूलन के प्रतिरूपों के रूप में अनुक्रिया के अन्तर्गत विघटन की दशा जन्म ले सकती है।

(५) अर्धजातीय या मध्यवर्ती समाजों में विघटन की सम्भावनायें अधिक होती हैं, क्योंकि उनमें सांस्कृतिक समतावाद पर विशेष बल दिया जाता है।

(६) स्तरीकरण तथा वर्ग-व्यवस्था से सम्बन्धित समस्याएँ, समाज में विघटन को प्रबलित करती हैं।

(७) सामाजिक विघटन के प्रतिफल के रूप में, व्यक्तित्व विघटन को स्वीकार नहीं किया जा सकता।"[6]

सम्बन्धों के बनने-बिगड़ने पर भी वह प्रभावित होता है। ये संबंध ही उसके लिए सामाजिक परिवेश का निर्माण करते हैं। इन्हीं कारणों से कहा जा सकता है कि मनुष्य और समाज का घनिष्ट सम्बन्ध है। "एक समय था जबकि कुछ लोग व्यक्ति को समाज से पृथक् करके तथा कुछ लोग समाज को व्यक्ति से पृथक् करके अध्ययन करना चाहते थे।

परन्तु दोनों ही बातें संभव नहीं थीं, क्योंकि न तो व्यक्ति ही समाज से पृथक् पाया जाता है और न समाज को ही व्यक्तियों से पृथक् किया जा सकता है। दोनों एक-दूसरे से अत्यधिक संबंधित हैं।"[7]

यदि हम विचारपूर्वक देखें तो ज्ञात होगा कि जैसा व्यक्ति होगा, वैसा ही समाज होगा। प्रेमचन्द, प्रसाद प्रभृति कहानीकारों ने अपने समय के समाज का यथार्थ चित्रण अपनी कहानियों में किया है। प्रेमचन्द, प्रसाद ने हिन्दी कहानी परम्परा को एक नया मोड़ दिया। इसी परंपरा को इनके परवर्ती कहानीकारों जैनेन्द्र, यशपाल, अश्क और अज्ञेय ने आगे बढ़ाया।

जैनेन्द्र, यशपाल, अश्क, अज्ञेय आदि कहानीकारों का प्रभाव स्वतंत्रता के पश्चात् की कहानियों में भी देखने को मिलता है। स्वतंत्रता के पश्चात् अथवा इसके आस-पास जन्म लेने वाले कहानीकार - राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, कमलेश्वर, निर्मल वर्मा, मन्नू भंडारी, भीष्म साहनी, शैलेष मटियानी, रेणु, मार्कण्डेय, उषा प्रियंवदा, कृष्णा सोबती, धर्मवीर भारती एवं अमरकान्त प्रभृति कहानीकारों ने समाज का सहारा लिया और व्यक्ति की भावनाओं, दुःख-सुख, घुटन, वेदना, टीस, छटपटाहट, अकेलेपन, अजनबीपन, परिवारों की टूटन, प्रेम-सम्बन्धों में परस्पर संघर्ष, प्राचीन एवं नवीन मूल्यों के संघर्ष आदि के मध्य ग्रस्त व्यक्ति का सामाजिक एवं यथार्थपूर्ण चित्रण अपनी कहानियों में प्रस्तुत किया है।

नए कहानीकारों ने व्यक्ति और उसकी मानसिक विकृतियों, द्वंद्व और चिरंतन संघर्षो को अपने कहानी-लेखन का प्रमुख आधार मानते हुए सामाजिक कहानियाँ लिखीं। डॉ. प्रभाकर माचवे ने लिखा है - "इनके लिए कहानी न केवल व्यक्ति मन की बीमारियों का इलाज करने का नुस्खा है, न कोरे मनुष्य की इच्छाई और देवत्व के विषय में बार-बार आगाह करने का व्यास पीढ़ा मनुष्य की मौलिक अच्छाई और बुराई दोनों को सामाजिक यथार्थवादके परिपार्श्व में देखने का प्रयत्न इन लेखकों ने किया है। इस हिसाब से ये हिन्दी-कहानी को जनता के निकटतम लाए।"[8]

यह सामाजिकता दरअसल व्यक्ति के परस्पर सम्बन्ध से निर्मित होती है, बल्कि यह समाज ही दोनों के सम्बन्ध को सुव्यवस्थित आधार देता है। इस सम्बन्ध में नई कहानी के एक प्रमुख हस्ताक्षर राजेन्द्र यादव ने एक महत्वपूर्ण तथ्य की चर्चा की है। उनका कहना है कि "व्यक्ति समाज की इकाई जरूर है, लेकिन व्यक्ति, व्यक्ति मिलकर समाज नहीं बनाते। जो ऐसा कहता है, वह बहुत ही स्पष्ट सत्य से इन्कार करता है। व्यक्ति, मिलकर तो भीड़ बनती है। ईंट मकान की इकाई जरूर है, लेकिन ईट मिलकर मकान नहीं ढेर बनता है। असल में मकान बनता है - ईट-ईट के बीच का सम्बन्ध, वह क्रम जिससे अपने उन्हें परस्पर सम्बन्ध दिया है - तभी तो ईट-ईट मिलकर कभी दिवार बनती है, कभी मीनार। व्यक्ति-व्यक्ति के बीच का सम्बन्ध समाज बनाता है, सम्बन्ध ही वह कड़ी है जो व्यकित और समाज के अस्तित्व को, विकास और प्रगति को सार्थक करता है।"[9]

दरअसल राजेन्द्र यादव ने नई कहानी में सम्बन्धों की प्रमाणिकता की खोज की

जो बात कही है, वह इसलिए भी प्रासंगिक हो जाती है कि स्वातंत्र्योत्तर दशक में आर्थिक दबाव के कारण सन्बन्धों के विघटन की प्रक्रिया बहुत तेजी से शुरु हुई थी। भारत में परिवार, सामाजिक जीवन का महत्वपूर्ण अंग माना जाता रहा है। पर आज भारतीय परिवार भी पहले की अपेक्षा बदल गया है। डॉ. शिवप्रसाद सिंह ने इस समस्या पर विचार करते हुए लिखा है - "आज का परिवार न तो मनुस्मृति के नियमों पर चलता है और न मिताक्षरा के विधानों पर। आज के परिवार के सामने न तो रामायण आदर्श है और न महाभारत ही। सच तो यह है कि भारतीय परिवार भी देश के ही समान अजीब कशमकश, घुटन, अलगाव, दिशाहीनता, ईर्ष्या, कलह और तू-तू मैं-मैं के दौर पर से गुजर रहा है। संयुक्त परिवार टूट चुके हैं या टूट रहे हैं।"[10] इसका सीधा असर सामाजिक जीवन पर पडता है। सम्बन्धों की पवित्रता और मर्यादा खंडित होती जा रही है। इन टूटते हुए सम्बन्धों का चित्रण नई कहानियों में पर्याप्त हुआ है।

सामाजिक जीवन में होनेवाले परिवर्तनों ने कहानीकारों को एक नया दृष्टिकोण दिया। यह दृष्टिकोण अधिक यथार्थवादी और मानवीय था जिसके अन्तर्गत परिवार और समाज के नये सम्बन्धों को देखा-परखा गया। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में इस सामाजिक संघर्ष का स्वर मुखरित हुआ है। खासकर आज के सामाजिक जीवन की विसंगतियों को इन कहानियों में विशेष रूप से चित्रित किया गया है।

कामतानाथ की कहानी "शापग्रस्त" आज के सामाजिक जीवन में पारिवारिक विघटन का चित्रण उपस्थित करती है। रीता ने बी.ए.पास किया है। वह इस उम्मीद में

बैठी है कि छोटे भैया विदेश में रहते हैं और यहाँ लौटना नहीं चाहते। उन्होंने कुछ दिनों से पैसा भेजना बन्द कर दिया है। बड़े भाई घर में रहकर भी घर से अलग हैं। सिर्फ खाने पर ही उनका मतलब रहता है। घर में कौन सामान है, क्या नहीं है, यह पूछनेवाला कोई नहीं है। घर में खाना अक्सर बिना शब्जी के ही बनता है। क्योंकि सब्जी लाने में किसी को दिलचस्पी नहीं है, सिवाय पिता के । पर उन्हें चढ़ने-उतरने में तकलीफ बढ जाती है। इसलिए रीता उनसे कहती ही नहीं। तीन बेटों के रहते हुए भी पिता अकेले समस्याओं से जूझते रहते हैं। माँ घर की सुख-शांति के लिए पूजा-पाठ का आश्रय लेती हैं और रीता रात-दिन घर के कामों में लगी रहती है। भाभी भी किसी काम में मदद नहीं करतीं। "एक घर में रहते हुए भी भैया-भाभी ने अपने को अलग कर लिया है। दोनों भाई जब-तब रीता को पुकार कर कोई आदेश देते हैं और वह हमेशा पालन के लिए तैयार रहती है। वह शापग्रस्त जिन्दगी उसकी नियति है।"[11]

रीता अपनी इच्छा के अनुसार कुछ नहीं कर पाती क्योंकि सामाज़िक वजह से वह अपने ही घर में बंधनग्रस्त हो गई है। वह अपने जीवन को शापग्रस्त मानती है। सामाजिक रीति के अनुसार माता-पिता द्वारा आयोजित विवाह को ही स्वीकार किया जाता है। क्योंकि अपनी इच्छानुसार विवाह करने के बाद यदि उनमें सम्बन्ध-विच्छेद होता है तो कोई सामाजिक सुरक्षा उन्हें प्राप्त नहीं होती। समाज से जुडे रहने की भावना से वे समाज द्वारा स्वीकृत विवाह को ही अपना लेते हैं। समाज उन दोनों अजनबियों से यह आशा करता है कि जीवनभर साथ रहें। इसलिए न चाहने पर भी वे कुढन और खिन्नता से भरे हुए सारा जीवन बिताते हैं। इन्हीं से जुड़ी मोहन राकेश की "सुहागिनें" कहानी की मनोरमा

ऐसा ही अभिशप्त जीवन जीने के लिए विवश है । वह अपने पति से प्रेम तो करती है लेकिन उसके द्वारा दी गई जिन्दगी से उसे कोई लगाव नहीं है । सामाजिक मान्यताओं और परम्पराओं के कारण ही वह वैवाहिक जीवन को ढोती रहती है । वैवाहिक जीवन का सुख उसे नहीं मिलता । फिर भी वह उस सम्बन्ध को तोड़कर अन्य विवाह नहीं कर पाती और निरन्तर अकेलेपन को भोगती है । "वह मात्र एक परवशता है, ठीक उस सुहाग की तरह जो बरबस माथे पर आ लगता है, और उसे निभाये जाना विवाहित नारी का प्रथम कर्तव्य हो जाता है, भारतीय संस्कृति के मानदण्डों के प्रतिमानों के अनुसार ।"[12]

कमलेश्वर की एक कहानी "क्वार्टर" में नायिका राधा भी न चाहते हुए भी परिवार से जुड़ी हुई है । शंकर और राधा में अकसर तनाव होता रहता है । एक छोटे से घर में कई लोग एक साथ रहते हैं । ननदें राधा पर कई तरह के ताने कसती रहती हैं । कोई ऐसा कमरा नहीं है जहाँ वह कुछ देर अकेली रह सके । मिसेज शर्मा का अपने घर में अनावश्यक हस्तक्षेप भी उसे बर्दास्त नहीं होता । फिर भी वह सब कुछ सहती जाती है । क्योंकि सामाजिक दबाव और सम्बन्धों को निभाने की मजबूरी के कारण वह किसी का विरोध नहीं कर पाती ।

मोहन राकेश जी की "क्वार्टर" कहानी में टूट रहे पारिवारिक संबंधों की व्यर्थतता और अकेलेपन की यन्त्रणा में सामाजिक बोध की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है । परिवार के सभी लोग स्वयं में सिमटे हुए एक-दूसरे को दोष देते हैं , खीझते हैं और क्रोधित होते हैं । क्वार्टर में रहकर भी बाप-बेटे, बहू, भाई-भाई सभी एक-दूसरे से कटे हुए अजनबी और फालतू

बनकर संबंधों की निरर्थकता में टूट रहे हैं। वर्तमान क्रूर सामाजिक व्यवस्था और पारिवारिक स्वार्थ के बीच पिसता व्यक्ति अपने ही परिवार में अजनबी हो गया है। आज व्यक्ति और परिवार के बीच का संबंध बहुत ही औपचारिक हो गया है। प्राचीन सामाजिक मूल्यों के आग्रही प्रो. भार्गव परिवर्तित परिवेश से तादात्म्य स्थापित न कर पाने के कारण पिछले दो-तीन साल से अपने घर के भीतर एक अजीब सा तनाव महसूस करते हैं और हमेशा ऐसा लगता है जैसे वे ही उस तनाव का केन्द्र हैं। मानो उनके और परिवार के बीच एक दूरी आ गयी है, जिसे वे हर क्षण समझते हैं, शब्द नहीं दे पाते। सब लोग उनके लिए धीरे-धीरे अपरिचित और अनजाने हो गये हैं। "प्रो. भार्गव ने अपने दो भाईयों को अपने पास रखकर पढ़ाया था। उन्होंने चाहा था कि दोनों भाई मिलकर खर्च उठा लेंगे तो मकान बनवाने का कर्जा, बीना के ब्याह और आनन्द व मुन्नी दोनों को पढ़ाने का बोझ वे उठा लेंगे। लेकिन आज उनमें से कोई दो-दो साल तक खत ही नहीं डालता। भाईयों के प्रति अपना फर्ज पूरा करने का सन्तोष उन्हें जरूर है, लेकिन अब उनको देखकर वे पत्नी के सामने आँख नहीं उठा पाते। लड़की की शादी न हो पाने और उसके साथ हुई घटना ने उन्हें चिडचिड़ा बना दिया है। ऐसा लगता है सारी दुनिया में वे अकेले रह गये हैं।"[13]

घर के सभी सदस्य बीना के गैरजातीय विवाह के पक्ष में हैं। प्रो. भार्गव परम्परागत मूल्यों के पक्षधर हैं इसलिए वह सब से कट गये हैं। अपने घर-परिवार -सबसे प्रो. भार्गव अजब वैराग्य सा अनुभव करते हैं क्योंकि घर में उनको समझने के लिए कोई तैयार ही नहीं। घरवालों ने जैसे अपमान और उपेक्षा देकर उनका मूक बहिष्कार कर रखा हो। उन्हें लगता है कि "सचमुच उनकी जिन्दगी बेकार गयी। .. घर में बिलकुल कटे हुए वे

सबसे अपरिचित, अनजान और बाहर से असफल... । माँ-बाप ने गृहस्थी लाद दी, सो ढोते चले जा रहे हैं ।"[14]

भीष्म साहनी की "तस्वीर" कहानी की बहू की जिन्दगी परिवार के अधीन है, पहले उसकी बागडोर पति के हाथ में थी और पति की मृत्यु के बाद अब ससुर के हाथ में आ गयी थी । एक ही छत के नीचे रहते हुए पहले पति-पत्नी दोनों एक-दूसरे से कोसों दूर थे... "अब वह नहीं हैं तो बच्चों के रहते भी घर भांय-भांय करता है । दर-दर ठोकरें खाती अन्दर ही अन्दर छटपटाती उसे लगता है... मैं जिन्दा भी मरी हुई के बराबर हूँ ।"[15] बुत बनी उसे ससुर से भी कोई आशा नहीं, उम्मीद नहीं ।

सामाजिक भ्रष्टाचार में नारी ही अधिक कलंकित हुई है । अपमान, उपेक्षा और विभिन्न यंत्रणाओं में उसकी जिन्दगी गुम होती गयी है । कलंकित होने पर न दुःख का गम न सुख की चाह रह गयी है । सिर्फ सामाजिक दबाववश अपने आप दुःख सहे जा रही है । पति के बगैर जिन्दगी जीना, ससुर के इशारों पर चलना यह सब बातें अब सहज हो गई हैं उसके लिये ।

रामदरश मिश्र की कहानी "एक अधूरी कहानी" में बड़े भाई की काम पिपासा में सोहानी भऊजी का जीवन नरक हो गया । लोकलज्जा की वजह से पहले घर छोडना, लम्बे समय की यातना भऊजी के हिस्से आ गयी थी । सुन्दर सोनार के साथ भागना, कलपू के दुर्व्यवहार से तंग आकर उसकी हत्या करना... और फिर पुलिस की हिरासत में

इस दुनिया में निपट अकेली कर दी गयी भाऊजी का कोई नहीं था जो उनको सहारा देता। इस प्रकार एक पत्नी अपने पति से, एक माँ अपने बेटे से सदैव के लिये वंचित कर दी गयी थी। सामाजिक भ्रष्टाचार की गलियों से तीसरी बार कलंकित होने पर सोहागी भाऊजी जेल की सजा काटकर जब गाँव वापस आती है और अपनी खेत की मिट्टी में प्राण-त्याग करती है - उसका अत्यन्त हृदयद्रावक चित्र कहानीकार ने उपस्थित किया है।

खानदानी घर की आड़ में सदियों से नारी अत्याचार, अनाचार और शोषण का शिकार हो रही है। घर का हमेशा के लिए बंध कर उसे आत्महत्या... कुआँ, चौका, बर्तन, वेश्यावृत्ति.... और जाने क्या-क्या सोचने के लिए विवश कर दिया जाता है। उस पर कोई भी अत्याचार किया जा सकता है, लेकिन मुँह से वह एक शब्द भी नहीं निकाल सकती। परिवार द्वारा पति को भी पत्नी के विरुद्ध कर देना सामान्य बात है, ऐसी स्थिति में यहाँ कोई भी उसका रक्षक नहीं। वह भयभीत है, आतंकित है। उसके सामने अनेक प्रश्न उभर आते हैं तो मैं यों ही मुँह बन्द किये मर जाऊँ, या यहाँ से भाग जाऊँ..."[16]

सामाजिक रूढ़ि-परम्परा का त्याग कर आज नारी उसका मूल्य चुकाने के लिए विवश और मजबूर है। इस में उसकी स्थिति कटी पतंग की तरह हो गई है।

कमलेश्वर की कहानी "दुनिया बहुत बड़ी है" में चालीस वर्ष पूर्व प्रेम-विवाह करने वाली अन्नपूर्णा को कभी किसी ने अपना नहीं माना। उसे पति-गृह से लेकर अपने गाँव तक में तीस वर्ष का अजनबीपन और सम्बन्धों की दूरी को ढोना पडा है। उसके लिए

दोनों बस्तियाँ बेगानी हो गयी हैं। हारी-बीमारी में कोई पूछने वाला नहीं। वक्त के साथ-साथ जिन्दगी भार होती जा रही है। इसलिए मन करता था सब छोड़कर कही चली जाए.. लेकिन ऐसे में कहाँ जाएँ... उसकी दुनिया तो बहुत छोटी हो गयी है। जिसमें खडी होने की भी जगह नहीं है।

सरोज पाठक की कहानी "सौगंध" की "पूर्वी विवाहित लेकिन परित्यक्ता है। संबल नामक युवक उसका प्रेमी है और विवाहित भी है। पूर्वी परित्यक्ता है किन्तु संबल सामाजिक बंधनों से मुक्त नहीं फिर भी पूर्वी अपना प्रेम संबंध निभाती है। साथ ही जो सुख मिला है उसे किसी को भी हानि पहुँचाये बिना प्रेमी के साथ रहकर भोगना चाहती है। सामाजिक बंधनों से मुक्त।"[17]

इसी तरह उषा प्रियंवदा की 'प्रेयसियाँ' मन ही मन किसी अज्ञात पीडा को पाले हुए हैं चाहे आर्थिक दृष्टि से वे स्वतंत्र रही हों फिर भी उदासी भरा जीवन बिता रही हैं। उषा जी की "कंटीली छांह" कहानी की प्रेमिका विवाहित है। उससे वैयक्तिक सुख के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि प्रकट होती है। विवाह के सामाजिक बंधन में जहाँ केवल कष्ट ही है वहाँ वैयक्तिक धरातल का अहेसास महसूस कर उसे निभाती जाती है।

श्रीमती चन्द्रकिरण सौनरेक्साजी की कहानी "गृहस्थी का सुख" में एक मध्यमवर्गीय अपराधिनी नारी की कहानी है। बड़ी बहू पच्चीस वर्ष की होने तक भी संतानवती न होने के कारण अपराधिनी ठहराई जाती है। आखिर शिवसहाय का दूसरा विवाह ही हो गया।

बड़ी बहू को रात-दिन सास की खरी-खोटी सुननी पड़ती है। सामाजिक बंधन की वजह से वह अपने आपको परिवार से दूर भी नहीं कर पाती। "हाँ, हाँ, नहीं तो सास ने गरम कर कहा - रूक क्यों गयी, कोस ले जी भर कर। पर कहे देती हूँ जो मेरे बेटे-बहू को कुछ हो गया तो, जानेगी कुलच्छनी। राम-राम करके अब इस छोटी बहू ने बंसबेल चढाने की आस दिखलाई है, सो तू दिन-रात दाँत पर दाँत बजाकर चढने न दे, डायन कहीं की।"[18] अन्त में वह विवश होकर आत्महत्या कर लेती है। दूसरी पत्नी आठ बालकों को जन्म देकर आधि-व्याधि से जर्जर हो चल बसी, जिनमें कुल चार शेष रहे सो भी अच्छा भोजन न मिलने से चिड़चिड़े और बीमार हो गये।

इन्हीं की कहानी "कमीनों की जिन्दगी" में मध्यमवर्ग की गृहिणी कुसुम की विवशता का चित्रण है - पति द्वारा डाँट-फटकार, मद्यपान करके अर्धरात्रि को बाहर से लौटना, मायके न जाने देना, जरा-सा बाहर झाँकने पर सन्देह की दृष्टि से देखना आदि। अपने पति के व्यवहार से विरक्त कुसुम अपनी कुलीनता के कारण घुल-घुल कर प्राण दे देती है। ठीक यही दशा "दो रोटियाँ" में संयुक्त परिवार में मशीन के समान काम करने वाली बहू 'उमा' की देखने को मिलती है। चन्द्रकिरण सौनरेक्सा की कहानियों में शोषण की चक्की में पिसते हुए मध्यम वर्ग की पीड़ा के दयनीय चित्रण के साथ ही साथ सामाजिक यथार्थ की तीव्र, कटु और गतिशील अभिव्यक्ति हुई है। लेखिका की दृष्टि सामाजिक क्षेत्र में पीडित, उपेक्षित स्त्रियों की दीन-दशा की ओर पूर्ण रूप से सजग रही है।

मन्नू भंडारी की "नशा" कहानी में पति के साथ पत्नी के सम्बन्ध को बड़े

आदर्शात्मक एवं संवेदनात्मक रूप में दर्शाया है। पति-पत्नी के प्रति निष्ठुर व्यवहार करता है किन्तु पत्नी दारूण दुःख सहकर भी पति की शराब के लिए पैसे जुटाती है। उसको इसी आत्मपीड़ा में ही सुख मिलता है। पति के साथ समाज के कारण अपना सम्बन्ध बनाये रखने के लिए वह इस पीड़ा को सहन करती रहती है।"[19] पति को नशे की हालत में छोड़ने के लिए वह तैयार नहीं। सामाजिक दबाव के कारण वह अपने पति को छोडने का विचार तक नहीं कर सकती। इस कहानी से जुड़ी कुन्दनिका कापड़ीया की कहानी "तो" की नायिका सुजाता भी एक आदर्श पत्नी है। पति के आगे उसकी कोई कीमत नहीं है, फिर भी पति सुधीर के सारे व्यवहारों को वह चुप कर सह लेती है। "पति उसके लिये प्रतिष्ठा और सुरक्षा का साधन मात्र है और दो बेटे 'इगो' का एक्स्टेन्शन हैं।"[20]

जिस स्नेह और अपनत्व की आकांक्षा व्यक्ति को होती है वह उसे परिवार में ही मिल सकता है। परिवार से कटा हुआ व्यक्ति उसकी सुरक्षा और स्नेह के लिए भटकता हुआ दिखाई देता है। वह इसे कभी परिवार में ढूँढता है, कभी वैवाहिक साथी में तो कभी संपूर्ण संसार में। लेकिन जब बाहरी वातावरण में उसे बेरूखी मिलती है तो वह घबरा जाता है। नए लोगों से सम्बन्ध बढाने की क्षमता उसमें नहीं होती। ऐसी स्थिति से बचाने के लिए ही सामाजिक दबाव उन्हें साथ रहने के लिए विवश करता है।"[21]

"ज्योति थानकी" की सुमति का पति भी एक अमीर शराबी है। वह धन के मद में अंध और प्रदर्शनप्रिय व्यक्ति था। पत्नी की सुन्दरता को वह भरी महेफिल में प्रदर्शित करना चाहता था। उसके आगे पत्नी के मूल्यवान हृदयधन की कोई कीमत नहीं थी। वह

हर चीज़ पैसों से तौलता था। बाहरी ठाठबाट से ही वह व्यक्ति की कीमत करता था। सुमति के दिल की उमंगों का उसने कभी स्वागत नहीं किया था। हमेशा शराब के नशे में घूमने वाला पति बेतुकी बातें करता और न सुनने पर बुरी तरह पीटता था। पति की इन हरकतों से वह दुःखी होती है लेकिन निराश नहीं। वह पति से तलाक लेकर पिता के घर चली जाती है और पढ़-लिख कर अपने पैरों पर खड़ी रहती है।"[22] समाज में स्त्री ही हर समस्या को झेलने की चीज है? सामाजिक प्राणी होने के नाते व्यक्ति का समाज के प्रति भी कुछ दायित्व और सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने के लिए कुछ नियमों का पालन करना अनिवार्य हो जाता है। किन्तु यदि इन सामाजिक मूल्यों में समय के साथ संशोधन या परिवर्तन नहीं होता तो धीरे-धीरे ये रूढ़ होते जाते हैं और अपना महत्व खो बैठते हैं। इन खोखले एवं आरोपित मूल्यों की जड़ता से मुक्त होने की छटपटाहट ही संघर्ष को जन्म देती है।"[23]

मोहन राकेश की कहानी "एक और जिन्दगी" में पति प्रकाश अपनी पत्नी बीना से न पटने पर उस जीवन को निभाता नहीं बल्कि अलग होने का फैसला कर लेता है। वह सामाजिक बंधनों को स्वीकार न करते हुए सोचता है कि वह पुरानी जिन्दगी आरम्भ कर सकता है। "कितने इन्सान है जिनकी जिंदगी कहीं न कहीं, किसी न किसी दौराहे से अलग दिशा की तरफ भटक जाती है। क्या उचित नहीं है कि इन्सान उस रास्ते को बदल कर उसे सही दिशा में ले जाए? आखिर आदमी के पास एक ही तो जिन्दगी होती है - प्रयोग के लिए भी और जीने के लिए भी। तो क्या आदमी एक प्रयोग की असफलता को जिन्दगी की असफलता मान ले?"[24] वह अपनी पत्नी से तलाक ले लेता है और अपनी जिन्दगी नये तरीके से शुरू करने की कोशिश करता है।

मोहन राकेश की एक और कहानी "पहचान" में भी पति-पत्नी न निभने पर साथ-साथ रहने के लिए मजबूर नहीं हैं। वे अपनी इच्छानुसार विवाह करने के लिए स्वतन्त्र हैं। वैसे भी अब विवाह के नियमों में भी परिवर्तन हो गया है। स्त्री-पुरूष अब सामाजिक दबाव को नहीं मानते। वे अपनी इच्छानुसार जिन्दगी व्यतींत करना चाहते हैं। पुरूष अपनी सुविधा संग और तृप्ति के लिए अब पत्नी नहीं एक सहयोगिनी चाहता है, जिसके साथ जीवन का क्षण-क्षण बिताने की मजबूरी न हो।

धर्मवीर भारती की जुलकी भी पति की अमानवीयता का शिकार है। जुलकी का पति कसाई जैसा था। पांच बरस बाद जुलकी को मरा हुआ बच्चा पैदा हुआ तो उसने धक्का देकर जुलकी को सीढ़ी से नीचे धकेल दिया। जिसके परिणामस्वरूप वह जिंदगीभर के लिए कुबड़ी हो गई। बाद में उसे पति घर से निकाल देता है और दूसरी औरत रख लेता है। लेकिन अन्त में पति उसे लेने जाता है तो पति के पास पान का बीडा पहुँचाने के लिए सज्ज होकर पहुँच जाती है।"[25]

इस कहानी से सिद्ध हो जाता है कि अशिक्षित वर्ग में आज भी नारी सामाजिक मान्यताओं की बेड़ियों में जकडी है, पति उससे चाहे जैसा व्यवहार करे, वह पति से अलग नहीं होना चाहती। इसमें सामाजिक मर्यादा और उसकी अपनी आवश्यकताएँ - दोनों ही कारणरूप हो सकती हैं।

शिवप्रसाद सिंह की कहानी "केवड़े का फूल" में तो पति अपनी पत्नी को पैर की

जूती समझता है। उसे अपने मनोरंजन के अतिरिक्त मित्रों तक के मनोरंजन का साधन बना देना चाहता है।

शिवकुमार जोशी की 'कांचनी दिवाल' कहानी की नायिका भी पति की अमानवीयता की शिकार है। खुद पति में कमी है लेकिन उसका निशाना पत्नी को बनना पडता है। वह सारा गुस्सा उस पर उतारता है। उसे बुरी तरह मारता है और उसके साथ पशु-सा व्यवहार करता है। लेकिन फिर भी राका अपनी सहनशक्ति द्वारा दाम्पत्य जीवन के तिनकों को बिखरने से बचाती है। पति तब भी अपनी पशुता नहीं छोड़ता तब उसे लगने लगता है - केवल मेरे स्वमान पर तो इस दाम्पत्य की दीवारें नहीं खड़ीं। आखिर मैं अपने स्वमान की खातिर कब तक सहती जाऊँ।"[26]

कभी-कभी पति पत्नी को इतना गिरा देता है कि परित्यक्ता या तलाकशुदा पत्नियों को पति के छोड देने के बाद भी दूसरे पुरूष साथी की जरूरत उन्हें महसूस नहीं होती, जबकि पति पत्नी को तलाक देकर तुरंत दूसरी शादी करने की बात सोचने लगता है। पति दूसरी स्त्री के पास चला जाता है लेकिन पत्नी विचलित नहीं होती और परित्यक्त होने पर भी दूसरा पुरूष नहीं खोजती।

ज्योति थानकी की 'स्वयंसिद्धा' की चंपा भी पति के व्यवहार से तंग आकर घर छोड़कर चली जाती है लेकिन दूसरे पुरूष के बारे में नहीं सोचती।[27] मोहन राकेश, कमलेश्वर, भीष्म साहनी आदि लेखकों की क्रमशः सुहागिनें, देवा की माँ और सिर का

सदका कहानियों में भी पत्नी का यही रूप देखा जा सकता है।

राजेन्द्र यादव की कहानी "पास-फेल" के प्राचीन सामाजिक मूल्यों के आग्रही प्रो. भार्गव परिचित परिवेश से तादात्म्य स्थापित न कर पाने के कारण पिछले दो-तीन साल से घर के भीतर एक अजीब सा तनाव महसूस करते रहते हैं और उन्हें हंमेशा ऐसा लगता है जैसे वे ही उस तनाव के केन्द्र हैं। मानो उनके और परिवार के बीच एक दूरी आ गयी है, जिसे वे हर क्षण समझते हैं, शब्द नहीं दे पाते। सब लोग उनके लिए धीरे-धीरे अपरिचित और अनजान हो गये हैं। सामाजिक दबाव के कारण वह अपने आपको कोसते रहते है।

मोहन राकेश जी सामाजिक दबाव को पारिवारिक विघटन का कारण मानते हैं. किसी भी तरह के दबाव में व्यक्ति अपनी स्वाभाविक जिन्दगी नहीं जी सकता।"[28]

कई बार विवाह से पूर्व व्यक्ति की कुछ अपेक्षाएँ होती हैं जिन्हें वह अपनी जिन्दगी में पूरी करना चाहता है। लेकिन जब इच्छा के विपरीत माहौल मिलता है तो उसे घुटन महसूस होती है।

मणिका मोहिनी की "हम बुरे नहीं थे" कहानी में पति द्वारा किया जाने वाला अन्याय बयान करनेवाली स्त्री है। मगर भारतीय पति ने स्वयं की स्वतंत्रता हेतु आरंभ से ही पत्नी को आदर्शो के जाल में फांसने की कोशिश की है। इससे उसके अहं की तुष्टि तो हुई है लेकिन पत्नी को सामाजिक दबाव, घुटन और अकेलेपन के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिला।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् समाज में नर-नारी दोनों को शैक्षणिक आधार समान रूप से प्राप्त हुआ। आज व्यक्ति और परिवार के बीच का सम्बन्ध बहुत ही औपचारिक हो गया है। फिर भी पुरूष की अहम्मन्यता में कोई विशेष अन्तर नहीं आया है और स्त्री सामाजिक बंधनों से स्वतंत्र होने के लिए आतुर है -इसी क्रम में भीष्म साहनी की कहानी "घर की इज्जत" में नारी स्वतन्त्रता की ओर बढ़ना चाहती है मगर सामाजिक दबाव उसे आगे बढ़ने से रोकते हैं। कहानी की सुनंदा नाटक में भाग लेना चाहती है, किन्तु पति इन्कार कर देता है। वह स्वतन्त्रता को स्वीकार नहीं करता, किन्तु सुनंदा विद्रोह करती है। परम्परागत पारिवारिक मूल्यों को चुनौती देती है। इसे देखकर बड़ा देवर सुनंदा के पति को सलाह देता है 'जो अब भी न माने तो कुछ दिन के लिए मायके भेज दो, इसकी चंचलता जब तक टूटेगी नहीं, तब तक वह हमारे घर में रह नहीं पाएगी। इस वक्त दृढ रहोगे तो उमर भर सुखी रहोगे।"[28]

दीप्ति खण्डेलवाल की कहानी "एक और कब्र" का कथ्य उपयुक्त कहानी के विमुख है। नौकरी करनेवाली नारी के व्यवहार का सबसे अधिक प्रभाव पति-पत्नी सम्बन्धों पर पड़ा है। कहानी की कान्ता नौकरी करती है। इसलिये वह पति के इशारे पर चलने को तैयार नहीं। उसकी फिजूलखर्ची को लेकर पति के ऐतराज करने पर वह कहती है - "मैं कमाती हूँ और मुझे हक है ठीक से जीने का। एक साड़ी खरीद ली तो क्या हुआ?"[29] वह पति से शट-अप की भाषा बोलती है। इससे ऐसा लगता है कि पत्नी पालित न रहकर पालक बन गयी है। समान अधिकार के स्तर पर जीने वाले अलग-अलग व्यक्तित्व के स्वामी हैं। अतः आज की नारी सामाजिक दबाव को ठुकराकर नये मूल्यों को अपना रही

है। पारिवारिक आत्मीयता के लिए ऐसी स्थितियाँ विग्रहकारिणी सिद्ध होती हैं।

पारिवारिक सामंजस्य को बनाए रखने में बहुत बड़ा हाथ पति-पत्नी की वर्गीय समानता का होना है। पति-पत्नी विवाह से पूर्व जिस वर्ग से जुडे होते हैं उस वर्ग के विचार और संस्कारों के वे आदी हो जाते हैं कि उनका प्रभाव उनके सम्पूर्ण जीवन पर पडता है।"[30]

साधारणतः माता-पिता द्वारा किये गये विवाह में इस तरह का संकट नहीं होता, क्योंकि अधिकांशतः आयोजित विवाह समान वर्ग में होते हैं। लेकिन जहाँ पति-पत्नी इच्छानुसार विवाह करते हैं, वहाँ इस तरह की भिन्नता होती है। एक-दूसरे के बीच प्रेम सम्बन्ध स्थापित करते समय यह बात ध्यान नहीं रखते। विवाह के पश्चात् दोनों के वर्गीय संस्कार प्रबल हो जाते हैं।

प्रायः वर्गीय संस्कार ही पति-पत्नी के सम्बन्ध विच्छेद का कारण बनता है। जिसमें दोनों अलग-अलग टूटते हैं। साठोत्तरी युग में विवाह-सम्बन्धी युवा वर्ग की अवधारणा बदली है, परन्तु वह अपने परिवार को भी खोना नहीं चाहता है । 'ज्ञानरंजन' की कहानी 'हास्यरस' में कहानी नायक अपनी प्रेमिका से, तीन मित्रों को साथ ले जाकर कोर्ट-मैरिज कर लेता है, परन्तु कोर्ट से बाहर निकलते ही अपने को टूटा-सा महसूस करता है, क्योंकि मन पर पुराने संस्कारों के बादल छाये हैं। युवा वर्ग पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव से स्वेच्छा से विवाह करना उचित समझता है। परन्तु सामाजिक, वंशानुगत संस्कारों से

यकायक छुटकारा पाना संभव नहीं होता है। नायक को अपने आप पर खीझ आती है, जीवन में प्रथम बार वह चिन्तित और भयभीत अनुभव करता है। कदाचित यह भय समाज और परिवार की मान्यताओं के नकार का है। तीन गवाह मित्रों के अतिरिक्त परिवार का कोई भी व्यक्ति विवाह में शामिल नहीं था। उसे दुःख होता है कि उसे माता-पिता का आशीर्वाद भी नसीब नहीं हुआ, भय है कि वह नववधू को स्वीकार करेंगे या नहीं। रजिस्ट्रार तथा अन्य उपस्थित लोगों के समक्ष की हुई शपथ उसने बड़ी निष्ठा के साथ की थी।

युवकों की केवल मानसिकता बदली है, परिवार के अधिकार और कर्तव्य की जानकारी और पिता और सामाजिकता का सामना करने का साहस आज के युववार्ग के पास नहीं है। साहसी तरीके से उसके जीने के सारे सपने चूर-चूर हो जाते हैं। यही खोने-पाने की स्थिति पति-पत्नी के संबंधों को प्रभावित कर विघटन खड़ा कर देती है।

आज परिवर्तन हुआ है। मगर कहीं एक कोने में आज भी सामाजिक दबाव जिन्दा है। 'गिरीश गणात्रा' की कहानी 'सातमुं पगलुं' इन्हीं से जुड़ी हुई समस्या को प्रस्तुत करती है।[31] हिन्दी-गुजराती कहानियों में यही एकरूपता देखने को मिलती है। सामाजिक परम्परा के अनुसार जब एक युवक और युवती विवाह डोर में बंध जाते हैं तो उनमें परस्पर कोई वर्ग भेद नहीं रहना चाहिए। राजेन्द्र यादव की कहानी 'टूटना' बदलते सामाजिक परिवेश में पति-पत्नी के संबंधों को व्यक्त करती है। किशोर लीना के अभिजात संस्कारों के प्रतिकूल है। उसका गट्-गट् खाना-पीना, चप्-चप् चाय पीना सब लीना को पसंद नहीं है। 'तुम्हें सभ्य समाज में उठने-बैठने का मौका नहीं मिला, इसलिए शायद यह नहीं जानते कि यह

अशिष्टता है ।"[32]

प्रतिदिन पति-पत्नी में चख-चख किसी न किसी बात को लेकर हुआ करती है। किशोर में मध्यमवर्गीय संस्कार हैं और पुरुष का अहं भी है, किन्तु सहज रूप में नहीं, अपने अवास्तविक रूप में, जहाँ वह आरोपित सा लगता है। लीना जैसी सुशिक्षिता सुसंस्कृत लड़की को वह पूरी तरह अपना नहीं सकता।

पारस्परिक सामंजस्य न होने के कारण पति-पत्नी अलग हो जाते हैं। लीना और किशोर दो वर्गो के प्रतीक हैं जिनकी शिक्षा और संस्कृति भिन्न-भिन्न हैं।

सामाजिक तनाव किन्हीं दो व्यक्तियों, दो समाजों या दो देशों के मध्य होता है। कारण लगभग समान होते हैं। भारत में समय-समय पर जातीयता, भाषा, साम्प्रदायिकता एवं प्रान्तीयता की समस्या को लेंकर सामाजिक तनाव की स्थिति देखने को मिलती है और इसके स्रोत रहे हैं - अपने अस्तित्व की रक्षा, असुरक्षा की भावना, मनुष्य के निजी स्वार्थ की पूर्ति हेतु अपनी-अपनी महत्वाकांक्षा, अनियंत्रित प्रयास परन्तु इन सबके मूल में है, सामाजिकता की भावना का अभाव। 'व्यक्तिगत तथा सामाजिक तनाव एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, एक ही कार्य के दो परिणाम।"[33] सामान्य रूप से तनाव आवश्यकताओं के अपूर्ण रहने या लक्ष्य निर्देशित व्यवहार के कारण उत्पन्न होता है। साठोत्तरी युग में हर समाज का व्यक्ति महत्वाकांक्षी हो गया है।

'मोहन राकेश' की कहानी 'अपरिचित' में नलिनी की महत्वाकांक्षा समाज में महत्वपूर्ण दर्जा पाने की है, जिसे वह अपने वैवाहिक जीवन में पूरा करना चाहती है। एक भरा-पूरा घर, जिसमें उसका शासन हो। वह अपने पति के महत्व को स्वीकार नहीं करती। उसकी भावनाओं का आदर नहीं करती। बल्कि अपनी अधिकार भावना से स्वयं को पति से अधिक महत्वपूर्ण साबित करना चाहती है। जब वह अपनी आकांक्षा की पूर्ति होते नहीं देखती तो कुढती है तथा पति से अलग हो जाती है - "मैंने विवाह के पहले दिनों में ही जान लिया था कि नलिनी मुझसे विवाह करके सुखी नहीं हो सकती, क्योंकि मैं उसकी कोई भी महत्वाकांक्षा पूरी करने में सहायक नहीं हो सकता।"[34]

मध्यमवर्गीय नारी में इस तरह की महत्वाकांक्षा अधिक होती है, क्योंकि पति के समान शिक्षित होने के कारण वह अपने आपको किसी भी रूप में कम नहीं समझती। जहाँ ऐसा होता है वहां सम्बन्ध बिगड़ते हैं। जिस वर्ग में नारियों में चेतना हो और वे उस चेतना को दमित होता महसूस करती हो, वहीं उर्जस्विता और महत्वाकांक्षा का उदय स्वाभाविक है। वैवाहिक संबंधों में ऐसी नारियाँ आसानी से नहीं खप पातीं। इसलिए इनके कारण भी समस्या पैदा होती है।"[35]

'सूर्यबाला' की कहानी 'रेस' में पति का अत्यधिक महत्वाकांक्षी होना, रात-दिन अपने कार्य में व्यस्त रहना, सफलता के उच्चतम शिखर को स्पर्श कर लेना, पति को पत्नी और संतान से दूर कर देता है। भौतिक सुखो के रहते भी वह पति का साहचर्य और उसका प्रेम पाए बिना निराश और अधूरी रहती है। पति को उसकी महत्वाकांक्षा ही

सर्वाधिक प्रिय हो जाती है। प्रिया के प्रेम को भी वह अपनी महत्वाकांक्षा के लिए ठुकरा देता है। ऐसी स्थिति में पत्नी जो कि पति के सर्वाधिक निकट होती है, वह भी दूर हो जाती है।

सुधीर जैसे महत्वाकांक्षी, पत्नी की भावनाओं को समझ नहीं पाते। उनकी महत्वाकांक्षाएँ पत्नी के अरमानों को सदा के लिए कुचल देती हैं।

"व्यक्ति की आकांक्षाएँ जीवन में बहुत कुछ पा लेने की अवश्य होती हैं, लेकिन इसमें एक सीमा तक ही उसे सफलता मिलती है। मनुष्य को समाज में रहते हुए अपनी बहुत सी इच्छाओं का दमन करना होता है, क्योंकि सामाजिक दबाव के कारण उस पर कई बातों के लिए रोक लगाई जाती है। कई बातें ऐसी हैं जिन्हें समाज पसंद नहीं करता और कई बातें ऐसी हैं जिन्हें सामाजिक अवहेलना या सामाजिक थुक्का-फर्जी के भय से व्यक्ति नहीं करता। इसीलिए कई बार पति-पत्नी भी सम्बन्ध बिगड़ने पर तलाक तो नहीं लेते, मगर अलगाव को स्वीकार कर लेते हैं।"[36]

समाज में, सामाजिक तनाव को उत्पन्न करने में विभिन्न समाजों के गत्यात्मक पारस्परिक सम्बन्धों का विशेष हाथ रहता है। प्रत्येक समाज के नैतिक, धार्मिक एवं सामाजिक नियम एक-दूसरे से भिन्न होते हैं और कभी-कभी उन नियमों तथा व्यवस्थाओं के मध्य विरोध पैदा हो जाता है। सामाजिक नियमों में भिन्नता होने के कारण ही उस समाज के लोगों का सामाजिक शिक्षण भी एक-दूसरे से भिन्न हो जाता है जो कुछ समय के बाद सामाजिक तनाव का आधार बनता है।

शैक्षणिक, नगरीय, औद्योगिक और तकनीकी प्रगति ने परिवार के सदस्यों, विशेष रूप से पति-पत्नी, माता-पिता और बच्चों के सामने नई भूमिकायें प्रस्तुत की हैं, जिसके परिणामस्वरूप पारिवारिक मूल्य विघटित हुए हैं। नई समस्याएँ खडी हुई हैं। मुख्यतः पति के वर्चस्व और पत्नी की परवशता का पारम्परिक स्वरूप बहुत अधिक परिवर्तित हो गया है। एक ओर पुरूष स्वेच्छा से अपनी प्रधानता और सत्ता को छोड़ने का इच्छुक नहीं है, तो दूसरी ओर स्त्रियाँ भी बाह्य दायित्वों को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। भारतीय समाज में पति और पत्नी की मानसिकता आज भी वैसी ही परम्परागत है। मानसिकता और व्यावहारिकता के बीच का यह विरोधाभास ही पारिवारिक तनाव को बढ़ावा दे रहा है। पारिवारिक दबाव वास्तव में परिवार की ऐसी संघर्षमय स्थिति का द्योतक है जो इसके सदस्यों विशेष रूप से पति-पत्नी के बीच विरोधात्मक मनोवृत्ति को सामाजिक बढावा देता है। यहाँ पर इस सत्य को नकारा नहीं जा सकता है कि पुरूष और स्त्री के बीच शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक भिन्नताएँ हैं। दोनों की रूचियों, भूमिकाओं, मनोवृत्तियों और अपेक्षाओं में पाये जाने वाले स्वाभाविक अन्तर के कारण उनकी जीवन शैली, कार्यप्रणाली आदि में अन्तर देखने को मिलता है। लेकिन इन सब विभिन्नताओं के बावजूद दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं इसलिए दोनों के बीच पारस्परिक सहयोग, विश्वास और स्पष्टवादिता (Frankness) जरूरी है। आधुनिक शिक्षा और संस्कृति में पले स्त्री पुरूषों में ऐसी समझ की कमी आयी है कि वे एक-दूसरे की इन स्वाभाविक भिन्नताओं को समझते हुए समायोजन करने का प्रयास कर सकें। पति और पत्नी के बीच सम्बन्धों के लिए आवश्यक है कि दोनों ही अपने अपेक्षित गुणों का विकास करें और एक-दूसरे को

उनके स्वाभाविक गुणों के आधार पर समझने का प्रयास करें। ऐसे समायोजन के अभाव में पारिवारिक जीवन में दरार पड़ जाती है।

भारतीय समाज में होने वाले परम्परागत रीति-रिवाजों, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक परिवर्तनों के फलस्वरूप बलदलते हुये सामाजिक मूल्यों, मानदण्डों, नैतिकताओं, लक्ष्यों, रूचि की भूमिकाओं आदि ने तनाव और असमायोजन की वृद्धि करके तीव्र गति से पारिवारिक इकाई का पृथ्थकरण किया है। उसने एक गम्भीर समस्या का रूप ले लिया है। सम्भावना है कि तनावग्रस्त पारिवारिक परिस्थितियाँ आगे ऐसी पीढ़ी को जन्म देंगी जो अपेक्षागत अधिक तनावग्रस्त, असुरक्षित और विघटनकारी होगी। दूसरे शब्दों में, आगे आने वाली पीढ़ी अपने माता-पिता के ही वैवाहिक सम्बन्ध के प्रतिमान की पुनरावृत्ति करेगी। परिवार और समाज के अस्तित्व को बनाए रखने के लिये इन बिन्दुओं पर चिन्तन की आवश्यकता है जिससे इन समस्याओं का समाधान ढूंढा जा सके।

****

सन्दर्भ सूचि

1. डॉ. महेशचन्द्र 'दिवाकर' - बीसवीं शती की हिन्दी कहानी का समाज - मनोवैज्ञानिक अध्ययन - पृ. 153
2. डॉ रवीन्द्रनाथ मुकर्जी - सामाजिक मनोविज्ञान की रूपरेखा - पृ. 53 से उद्‌धृत
3. "Society is s system of usages and procedures of authority and mutual did, of many groupings and devisions of controls of human behaviour and of liabilities... It is the webs of social relationships."

   - Maciver and Page - Society (Macmillan and Co., London), 1953, P-51
4. डॉ. म. दिवाकर - बीसवीं शती की हि. क. समाज - मनोवैज्ञानिक अध्ययन - पृ. 152, 153
5. तोमर - सामाजिक मनोविज्ञान - पृ. 467
6. विघटन का समाजशास्त्र - मर्टन का सामाजिक विघटन का सिद्धान्तीकरण - पृ. 103
7. डॉ. महेश दिवाकर - हिन्दी नई कहानी का समाजशास्त्रीय अध्ययन - पृ. 308
8. प्रभाकर माचवे - हिन्दी साहित्य की कहानी- पृ. 140
9. राजेन्द्र यादव - कहानी स्वरूप और संवेदना - पृ. 107
10. डॉ. इन्दु रश्मि - नयी कहानी का स्वरूप विवेचन - पृ. 91 से उद्‌धृत
11. कामतानाथ - नई कहानियाँ - वर्ष-6, अंक-8, दिसम्बर, 1965
12. डॉ. रघुवीर सिन्हा - हिन्दी कहानी समाजशास्त्री दृष्टि - पृ. 661
13. राजेन्द्र यादव - छोटे-छोटे ताजमहल - पास-फेल - पृ. 871
14. राजेन्द्र यादव - छोटे-छोटे ताजमहल - पास-फेल - पृ. 98-99
15. भीष्म साहनी - पटरियाँ - पृ. 651
16. डॉ. बिन्दू दूबे - स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में अलगाव की अवधारणा - पृ. 104
17. सरोज पाठक नी श्रेष्ठ वार्ताओ
18. चन्द्रकिरण सौनरेक्सा - आदमखोर - पृ. 30
19. यही सच है - कहानी संग्रह
20. कागळ नी होडी - कहांनी संग्रह - पृ. 216

21. मो. रा. का. सा. पारिवारिक सम्बन्धों में विघटन की स्थितियाँ - डॉ श्रीमती सुनीता श्रीमाल - पृ. 140
22. ज्योति थानकी - ना हूँ त्यां नहीं जाऊँ- अखण्ड आनंद - जनवरी-84 - पृ. 81
23. सविता जैन का कथन - हिन्दी कहानी दो दशक की यात्रा - सं. डॉ. रामदरश मिश्र, डॉ. नरेन्द्र मोहन - पृ. 132
24. एक और जिन्दगी - मोहन राकेश की सम्पूर्ण कहानियाँ - पृ. 279
25. गुल की बन्नो - धर्मवीर भारती - एक दुनिया समानान्तर (संग्रह) - संपा. राजेन्द्र यादव - पृ. 1401
26. शिवकुमार जोशी - कांचनी दिवाल - छलछल (संग्रह) - पृ. 184
27. ज्योति थानकी - स्वयंसिद्धा
28. भीष्म साहनी - घर की इज्जत - सारिका; अगस्त-1972 - पृ. 42
29. दीप्ति खण्डेलवाल - एक और कब्र - कहानी : जून-1975, पृ. 35
30. प्रमिला कपूर - भारत में विवाह और कामकाजी महिलाएँ - पृ 235
31. गिरीश गणात्रा - सातमुं पगलुं - जन कल्याण; अप्रैल-2002
32. राजेन्द्र यादव - टूटना
33. सामाजिक तनाव - जाति प्रथा के संदर्भ मं - डॉ. सतीष चन्द्र शर्मा, डॉ. श्रीमती कृष्णा रावत - पृ. 122 पुस्तक - सामाजिक तनाव विविध परीदृश्य
34. अपरिचित - मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ - पृ. 42
35. डॉ. श्याम सुन्दर घोष - भारतीय मध्य वर्ग - पृ. 189
36. मोहन राकेश का साहित्य पारिवारिक सम्बन्धों के विघटन की स्थितियाँ - श्रीमती सुनीता श्रीमाल - पृ. 160